क्यों टूटते हैं तारे?

डॉ. विजय कुमार उपाध्याय

सौर मंडल में मंगल और बृहस्पति की कक्षाओं के बीच काफी बड़ा फासला है। सन् 1801 में इस क्षेत्र में खगोल वैज्ञानिकों द्वारा एक छोटा पिण्ड खोजा गया जो सूर्य के चारों ओर परिक्रमा कर रहा था। उस समय से अब तक इस प्रकार के डेढ़ हज़ार से अधिक पिण्डों की खोज की जा चुकी है। इन पिण्डों को क्षुद्र ग्रह (एस्टेरॉयड) कहा जाता है। ये क्षुद्र ग्रह समय-समय पर एक दूसरे से टकराते रहते हैं। टकराने के कारण ये सूक्ष्म टुकड़ों में टूटते रहते हैं। ये सूक्ष्म टुकड़े उल्काणु (मीटिराइट) कहलाते हैं। ये उल्काणु विभिन्न दिशाओं में बिखर जाते हैं। इनमें से कुछ टुकड़े विभिन्न ग्रहों तथा अन्य ब्रह्माण्डीय पिण्डों से टकरा सकते हैं। ऐसे टकराव के निशान चन्द्रमा, पृथ्वी तथा मंगल की सतहों पर पाए भी गए हैं। ये निशान विभिन्न प्रकार के गड्ढों के रूप में मौजूद हैं।

उपरोक्त उल्काणु (मीटिराइट) जब पृथ्वी के वायुमंडल में प्रवेश करते हैं तो वायुमंडल के अणुओं से घर्षण के कारण उनमें से अधिकांश उल्काणु तेज़ प्रकाश के साथ जल उठते हैं जिन्हें उल्का (मीटियर) कहा जाता है। यह ज्वलन प्रकाश की एक लकीर के रूप में दिखाई पड़ता है। सामान्य बोलचाल में इसे टूटता तारा (शूटिंग स्टार) भी कहा जाता है। कुछ लोग इसे देखना शुभ या अशुभ मानते हैं। उल्काओं द्वारा छोड़ी गई प्रकाश की लकीर अधिक-से-अधिक एक मिनट तक ही दिखाई पड़ती है। अधिकांश उल्काओं का प्रकाश तो चंद सेकंड तक ही दिखाई पड़ता है। प्रकाश की यह रेखा उल्का द्वारा वायुमंडल के अणुओं को आयनीकृत करने के कारण दिखाई पड़ती है। अधिकांश उल्काएं भू-सतह से लगभग 100 किलोमीटर ऊपर दिखाई पड़ने लगती हैं तथा भू-सतह से 60-65 किलोमीटर की ऊंचाई तक पहुंचते-पहुंचते लुप्त हो जाती हैं। अधिकांश उल्काओं का वेग लगभग 40 किलोमीटर प्रति सेकंड होता है। ऐसे अधिकांश सूक्ष्म टुकड़े तो वायुमंडल में ही जलकर भस्मीभूत हो जाते हैं, परन्तु कुछ बड़े आकार के टुकड़े भू-सतह तक पहुंचने में सफल हो जाते हैं। भू-सतह पर गिरने वाले इन टुकड़ों को उल्का पत्थर (मीटिरॉयट) कहा जाता है। उल्का का रूप धारण करने वाले सूक्ष्म टुकड़े सौर मंडल में लाखों की संख्या में पाए जाते हैं।

उल्काओं का अध्ययन मानव प्रागैतिहासिक काल से ही करता आ रहा है। भारत के प्राचीन वैज्ञानिक वराह मिहिर द्वारा लिखित ग्रंथ वृहत् संहिता के उल्का लक्षणाध्याय में इस विषय की चर्चा विस्तार से की गई है। इस पुस्तक में उल्का के पांच प्रकार बताए गए हैं - घिष्णया, उल्का, अशानि, बिजली तथा तारा। घिष्णया पतली छोटी पूंछ वाली, प्रज्वलित अग्नि के समान, तथा दो हाथ लम्बी होती है। उल्का विशाल सिरवाली, साढ़े तीन हाथ लम्बी और नीचे की ओर गिरती हुई दिखाई देती है। अशानि चक्र की तरह घूमती हुई, ज़ोर की आवाज़ करती हुई पृथ्वी पर गिरती है। बिजली विशाल आकार की होती है जो तड़-तड़ आवाज़ करती हुई पृथ्वी पर गिरती है। तारा एक हाथ लम्बी तथा तेज़ प्रकाश करती हुई आकाश में एक ओर से दूसरी ओर जाती दिखती है।

उल्काओं तथा क्षुद्र ग्रहों की उत्पत्ति के सम्बंध में वैज्ञानिकों का एक विचार है कि अतीत में सौर मंडल का

कोई ग्रह टूटकर बिखर गया था, जिसके टुकड़े क्षुद्र ग्रह अथवा उल्काओं के रूप में परिवर्तित हो गए। कुछ अन्य वैज्ञानिकों की धारणा है कि अतीत में सौर मंडल के कोई दो ग्रह आपस में टकरा गए थे, जिसके कारण दोनों ग्रह नष्ट हो गए। इनके नष्ट होने से उत्पन्न टुकड़े आज हमें क्षुद्र ग्रहों तथा उल्काओं के रूप में दिखाई पड़ते हैं। परन्तु इस परिकल्पना को कुछ वैज्ञानिकों ने संतोषजनक नहीं माना है। उनके मतानुसार मंगल तथा बृहस्पति के बीच इतना बड़ा फासला है कि यहां दो ग्रहों के टकराने की संभावना नगण्य मालूम पड़ती है। कुछ वैज्ञानिकों ने एक तीसरी परिकल्पना प्रस्तुत की है। इस परिकल्पना के अनुसार क्षुद्र ग्रहों तथा उल्काओं का निर्माण सौर मंडल के निर्माण के साथ ही हुआ। आजकल अधिकांश वैज्ञानिक इसी परिकल्पना के समर्थक हैं।

भू-सतह पर पाए गए अनेक उल्का पत्थरों के विश्लेषण से पता चला है कि उनमें लोहा तथा निकल नामक धातुएं एवं कई प्रकार के सिलिकेट खनिज उपस्थित हैं। ये सिलिकेट खनिज उसी प्रकार के हैं जिस प्रकार के सिलिकेट खनिज बेसाल्ट नामक ज्वालामुखीय आग्नेय चट्टान में पाए जाते हैं। कुछ उल्का पत्थर तो शुद्ध लोहे के बने होते हैं। ये उल्का पत्थर देखने में ऐसे मालूम पड़ते हैं मानो पिघले लोहे को उच्च दाब पर धीरे-धीरे ठंडा किया गया हो। इस तथ्य को ध्यान में रखकर कुछ वैज्ञानिकों का पहले यह मानना था कि यह इस बात का प्रमाण है कि उल्काओं का निर्माण ऐसे ग्रहों के टूटकर बिखरने से हुआ है जिसके केन्द्रीय भाग में लोहा मौजूद था।

परन्तु हाल में कुछ वैज्ञानिकों द्वारा किए गए अध्ययनों से पता चला है कि इस प्रकार का लोहा कम दाब तथा निम्न तापमान पर भी निर्मित हो सकता है। कुछ उल्का पत्थरों में मौजूद रेडियोधर्मी खनिजों के विश्लेषण से पता चला है कि इनका निर्माण लगभग साढ़े चार अरब वर्ष पूर्व हुआ था।

अब तक किए गए विभिन्न अध्ययनों से पता चला है कि पृथ्वी की ओर आने वाली अधिकांश उल्काएं तो पृथ्वी के वायुमंडल से गुज़रते समय ही जलकर राख हो जाती हैं या वाष्पीकृत हो जाती हैं। प्रति 24 घंटे में औसतन दो करोड़ उल्काएं पृथ्वी के वायुमंडल से गुज़रते समय जल जाती हैं। कभी-कभी प्रत्येक घंटे में लाखों की संख्या में उल्काएं पृथ्वी के वायुमंडल में घुसकर जलकर भस्म हो जाती हैं। इस घटना को उल्का वर्षा कहा जाता है। ऐसी घटना हर वर्ष लगभग एक ही समय पर घटती है।

उल्काएं कृत्रिम उपग्रहों के लिए काफी खतरनाक साबित हुई हैं। संयोगवश यदि उल्काएं इन उपग्रहों से टकरा जाएं तो उपग्रह नष्ट भी हो सकते हैं। कभी-कभी किसी उल्का का टकराना काफी प्रलयंकारी साबित होता है। ऐसी ही एक घटना 30 जून 1908 को घटी थी। उस दिन रूस के साइबेरिया क्षेत्र में उल्कापात हुआ था। इस उल्कापात की आवाज़ उस स्थान से लगभग 600 किलोमीटर दूर तक सुनी गई थी। साथ ही लगभग 75 किलोमीटर दूर तक स्थित भवनों की खिड़कियों में लगे हुए शीशे टूट गए थे। इसके अलावा लगभग 30 किलोमीटर दूर तक के क्षेत्र में पेड़-पौधे उखड़ गए थे। इसके कारण उल्कापात स्थान के निकटवर्त्ती क्षेत्रों में असंख्य जीव-जन्तु मारे गए थे। साइबेरिया में ही सन् 1947 में पहाड़ी क्षेत्र में उल्का वर्षा हुई थी।

प्रत्येक उल्का अपने साथ बाह्य अन्तरिक्ष से पत्थरों एवं धूल कणों की कुछ मात्रा पृथ्वी पर अवश्य लाती है। अनुमान है कि प्रति दिन लगभग दस लाख किलोग्राम पदार्थ उल्काओं द्वारा बाह्य अन्तरिक्ष से पृथ्वी पर लाया जाता है। यह पदार्थ धूल कणों के रूप में होता है। ऐसे धूल कण ऊपरी वायुमंडल तथा ध्रुवों पर पाए गए हैं। परन्तु पृथ्वी के अपने द्रव्यमान की तुलना में उल्काओं द्वारा लाया गया पदार्थ नगण्य है। पृथ्वी की उत्पत्ति के समय से अब तक (अर्थात लगभग साढ़े चार अरब वर्ष में) उल्काओं द्वारा लाए गए पदार्थ की यदि पूरी मात्रा पृथ्वी पर फैला दी जाए तो उससे निर्मित होने वाली परत की मोटाई सिर्फ 30 से.मी. होगी। ***(स्रोत फीचर्स)***